International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 05-06-2021, Accepted: 22-06-2021, Published: 08-07-2021
Volume 3, Issue 3, 2021, Page No. 07-10

रीतिकालीन भारतीय समाज और नैतिक शिक्षा

डॉ सतीश कुमार पांडेय
प्राचार्य, शिक्षा महाविद्यालय मैसूर, कर्नाटक, भारत

सारांश
शिक्षा और समाज का पारस्परिक सम्बन्ध बहुत ही गहरा है। वस्तुतः किसी भी समाज की संरचना, आवश्यकतायें और उसमें उपलब्ध अलग–अलग तरह के स्त्रोत ही उस समाज की शिक्षा की नीति की आधारभूमि निर्धारित करते हैं। कहा भी जाता है कि शिक्षा का स्वरूप वैसा ही होता है जैसा हमारा समाज है और जैसा समाज हम बनाना चाहते हैं। शिक्षा के सामाजिक आधार का अर्थ यह है कि शिक्षा की व्यवस्था समाज की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं और आदर्शों के आधार पर की जानी चाहिए। शिक्षा के द्वारा बालकों में ऐसे सामाजिक गुणों को विकसित किया जाना चाहिए जिससे वे अपने कर्तव्यों का पालन कर सकें, अधिकारों का उपभोग कर सकें और समाज तथा देश के योग्य, कुशल, जागरूक और समर्पित नागरिक बन सकें। शिक्षा के द्वारा उनमें समाज के साथ अनुकूलन करने की क्षमता विकसित की जानी चाहिए। शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण का आधार उस समाज का जीवन दर्शन, समाज की संरचना और उसकी धार्मिक,, राजनीतिक, सांस्कृतिक व आर्थिक स्थिति होनी चाहिए। इसी प्रकार पाठ्यक्रम में उन्हीं विषयों एवं क्रियाओं को सम्मिलित करना चाहिए जो सामाजिक दृष्टि से उपयोगी हों, जो बालकों में सामाजिकता की भावना तथा सामाजिक गुणों का विकास करें और जो व्यक्ति की सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करें।

मूल शब्दः नैतिक शिक्षा, मानवमूल्य, नैतिकमूल्य, मानवता, विश्व बंधुत्व

प्रस्तावना

रीतिकालीन भारतीय समाज और नैतिक शिक्षा की बात की जाए तो रीतिकालीन भारतीय समाज की ग्रामीण सामान्य जनता के जीवन में नैतिक आदर्शों की स्पष्ट झाँकी देखने को मिलती है। राजदरबारी जीवन की अपेक्षा रीतिकालीन भारतीय ग्रामीण समाज नैतिक मूल्यों, मानव मूल्यों, परम्पराओं और मान्यताओं के प्रति अधिक जागरूक था। यदि रीतिकाल के समाज में कहीं नैतिक शिक्षा के उद्दात गुणों के दर्शन होते है तो वह ग्रामीण समाज में ही संभव हैं।

भारतीय ग्रामीण समाज वर्षो से अपनी संस्कृति एवं सभ्यता को अपनाए हुए है। भारतीय गाँव हमारी सभ्यता के प्रतीक हैं। भारतीय सभ्यता और संस्कृति विश्व की प्राचीन संस्कृतियों में से एक है, क्योंकि इसमें योग व त्याग की शक्ति समाहित है। आनादिकाल से भारतीय लोक जीवन संस्कृति के पोषक रहे हैं। ग्रामीण जीवन में तीज, त्यौहार, धार्मिक अनुष्ठान, सांस्कृतिक समारोह व संस्कारों का पवित्र स्वरूप देखने को मिलता है।

इन्हीं संस्कारों में नैतिक शिक्षा निहित होती है। ये संस्कार हमारी परंपराओं, मान्यताओं और धार्मिक विश्वासों को उजागर करते हैं। सदाचार, परोपकार, लोकाचार, धर्मानुसार आचरण ही हमें अनुचित कृ त्यों में संलग्न होने से रोकता है और उचित राह का मार्ग दिखाता है। प्रस्तुत लेख रीतिकालीन ग्रामीण समाज में समाहित नैतिक आदर्शों, मानव मूल्यों तथा नैतिक शिक्षा के वातावरण का उल्लेख करने में सफल है।

रीतिकालीन भारतीय समाज में नैतिक शिक्षा का अध्ययन करने से पूर्व रीतिकाल का सामान्य परिचय तथा नैतिक शिक्षा का अर्थ आदि विषयों का अध्ययन करेंगे।

रीतिकाल हिन्दी साहित्य का महत्वपूर्ण युग रहा है। रीतिकाल का आरंभ समान्यतया 1700 वि॰ से माना जाता है। रीतिकाल का 1700 वि॰ से 1900 वि॰ का समय निर्धारण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रदान किया। 1700–1900 वि॰ की रचनाओं में कवियों ने श्रंगारिकता को स्पष्ट करने के लिए भक्ति का सहारा लिया। बिहारी, देव, पद्माकर, मतिराम अनेक कवियों ने अपनी रचनाओं में भक्ति और नीति का समावेश तो किया किन्तु भक्ति, नीति और धार्मिकता यत्र–तत्र अल्प मात्र में दृष्टिगोचर हुई है, प्रमुखता श्रंगार चित्रण को ही प्रदान की गई है।

रीतिकाव्य का समय रीतिग्रंथों की रचना के लिए चरमोत्कर्ष का काल रहा है। रीतिकाव्य का लगभग 200 वर्षो का समय रीति निरूपण, श्रंगार चित्रण एवं नारी सौन्दर्य के विविध रूपों से परिपूर्ण है। रीतिकाव्य श्रंगारिकता से परिपूर्ण था और श्रंगारिकता के लिए अलंकरण अति आवश्यक था। अतः कवियों ने अलंकारों के माध्यम से श्रंगार वर्णन को अत्यधिक सजा संवार कर प्रस्तुत किया। श्रंगार वर्णन में अतिशयोक्ति अलंकार का विशेष महत्व रहा है।

अतिशयोक्ति अलंकार के अतिरिक्त अनुप्रास, यमक, श्लेष, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, असंगति, संदेह, व्यक्तिरेक, भ्रांतिमान, अनन्वय, विशेषोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग रीतिकालीन कवियों ने अपने काव्य में किया। इन कवियों ने नारी सौन्दर्य वर्णन में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का ही प्रयोग किया किन्तु अर्थालंकार को प्रमुखता प्रदान की। तत्कालीन युग में अलंकारों का कोमल, सरल ,एवं सूक्ष्म प्रयोग किया गया।

रीतिकवियों में बिहारी ,मतिराम ,देव ,पद्माकर एवं चिंतामणि आदि ने पूर्ण मनोयोग के साथ अपने काव्य में अलंकारों को स्थान दिया। रीतिकालीन कवियों ने रूपातिश्योक्ति अलंकारों के माध्यम से सौन्दर्य और नायिका रूप वर्णन को अलंकरण प्रदान किया। नायिका का प्रिय वियोग में व्यथित होना, साँसों का थमना और कभी तीव्र हो जाना, प्रिय के सुख में प्राणों को त्यागना आदि स्थितियों को अतिशयोक्ति अलंकार के माध्यम से अलंकरण एवं चमत्कार प्रदान किया है।

भक्ति कालीन साहित्य जब अध्यात्म की ओर से विमुख होकर विलास की ओर उन्मुख होने लगा और राधा कृष्ण की आध्यात्मिक लीलाएं सामान्य नायक नायिका की प्रेम लीलाओं में परिवर्तित होने लगीं। कवि आश्रयदाताओं की प्रशंसा में रचनाएँ करने लगे। ऐसी स्थिति में उस युग को रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाल का नाम देते हुये 1700द्1900 वि॰

समय निर्धारित किया। सर्वप्रथम ग्रियर्सन ने हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालों का नामकरण किया था। इन्होंने रीतिकाल को 'दि आर्स पोयटिका' नाम दिया।

तत्पश्चात मिश्रबंधुओं ने इस काल को अलंकृत काल नाम प्रदान किया क्योंकि इनका मानना था कि इस काल में शृंगार, अलंकरण एवं चमत्कार की प्रधानता रही है। मिश्रबंधुओं के बाद विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने तर्क प्रस्तुत करते हुए इस युग को काल नाम दिया। राहुल सांकृत्यायन एवं रमा शंकर रसाल ने कलाकाल नाम से अभिहित किया। रामचन्द्र शुक्ल ने सभी नामों को अस्वीकार करते हुए रीतिकाल नाम दिया। रीतिकाल नाम इस युग के कवियों एवं काव्यों की प्रवृतियों को दर्शाता है।

डॉ. भगीरथ मिश्र ने रीतिकाल नाम को महत्व दिया और उसे उचित मानते हुए अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया "कलाकाल कहने से कवियों को रसिकता की उपेक्षा होती है, श्रंगार काल कहने से वीररस और राज प्रशंसा की, रीतिकाल कहने से प्रायः कोई भी महत्वपूर्ण वस्तुगत विशेषता उपेक्षित नही होती है और प्रमुख प्रवृति सामने आ जाती है। यह युग रीति पद्धति का युग था, यह धारणा वास्तविक रूप से सही है।"[1]

रीतिकाल के नामकरण के समान ही प्रवर्तक कवि के विषय में भी विवाद रहे हैं, किन्तु अंततः केशवदास जी को ही रीति निरूपण के पथ प्रदर्शक स्वीकार किया गया क्योंकि इनके योगदान एवं प्रेरणा के फलस्वरूप ही रीतिग्रंथ परंपरा के विकसित होने का मार्ग प्रशस्त हुआ। डॉ. महेंद्र कुमार ने केशवदास को रीतिकाल का प्रवर्तक कवि स्वीकार करते हुए कहा "इस काल के अनेक कवियों ने केशव को कवि आचार्य कहकर उनके प्रति स्पष्ट शब्दों में अपनी क्षद्धा ही व्यक्त नही की, देव जैसे इस युग के प्रतिष्ठित कवि के प्रथम रीतिग्रंथ भाव विलास के लिए इनकी रचनाए ही प्रेरणा स्रोत रही हैं।"[2]

रीतिकाल के काव्य में प्रमुख विशेषताएं लक्षण ग्रंथों की सर्जना तथा श्रंगारिकता रही है, किन्तु इनके अतिरिक्त अन्य विशिष्टताओं में रीतिकालीन काव्य व समाज में नैतिक शिक्षा संबंधी तथ्य भी प्रदर्शित होते हैं।

पतनोन्मुख समाज के लिए आवश्यकता है, कि मानव जीवन को अधिक से अधिक उपयोगी, सुखमय और शांतिमय बनाने के लिए उसके जीवन पथ को सही दिशा की ओर मोड़ा जाए। भोगवादी प्रवृतियों को बदलकर उसके जीवन में सचरित्रता, सहयोग, परोपकार, कर्तव्यनिष्ठा, सदाचार, दयाशीलता और सेवाभाव जैसे श्रेष्ठ गुणों का समावेश किया जाए। यही आदर्श गुण नैतिक शिक्षा की श्रेणी में आते हैं। ऐसा होने पर ही मानव का वाह्य और आंतरिक समायोजन सही रूप में संभव हो सकेगा।

नैतिक शिक्षा के अंतर्गत मानव मूल्यों व नैतिक आदर्शों का समावेश होता है। इन मूल्यों को आत्मसात करके ही मानव सही अर्थों में शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए नैतिक शिक्षा की अवधारणा को पूर्ण कर सकेंगे तथा सत्यम्, शिवम् और सुंदरम् की कल्पना को साकार करने में सफल हो पाएंगे। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए वर्तमान में शिक्षा संस्थाओं में नैतिक शिक्षा की आवश्यकता अनुभव की जा रही है।

आधुनिक काल शिक्षा जगत का वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक विकास का काल कहा जाता है। अवधारणा यह भी है कि मनोवैज्ञानिक ढंग से बालकों का समुचित विकास होगा और उनके चरित्र में मानवीय मूल्यों के साथ साथ मानसिक शक्तियां भी पूर्ण रूप से विकसित होंगी। विद्वानों ने अपने अनुसार नैतिक शिक्षा के महत्व को स्पष्ट करने का प्रयास किया।

जेंटाइल के अनुसार– "जिस शिक्षा संस्था में नैतिक शिक्षा का समावेश नही, वह विद्यालय निरर्थक है।"[3]

इनके अनुसार नैतिक शिक्षा के अभाव में हम समुचित व उचित शिक्षा की कल्पना भी नही कर सकते। शिक्षा हमारे चरित्र में नैतिक मूल्यों का समावेश करने उचित अनुचित का बोध करती है। सही व गलत राह से अवगत करके हमारा मार्गदर्शन करती हैं, यदि शिक्षा में इन गुणों का अभाव हो तो वह मात्र पुस्तकीय ज्ञान तक ही सीमित है। ऐसी शिक्षा जीवन पथ पर मार्गदर्शक का कार्य नही कर सकती और ना ही वह सार्थक हो सकती है।

राधा कृष्णन ने नैतिक शिक्षा के महत्व को स्वीकार करते हुए कहा "यदि हम अपनी शिक्षा सस्थाओं में आध्यात्मिक शिक्षण को अलग कर दें, तो हम अपने सम्पूर्ण ऐतिहासिक विकास के विरुद्ध कार्य करेंगे।"4

प्रस्तुत परिभाषा के अनुसार नैतिक शिक्षा मानव को उसकी संस्कृति व परंपराओं का बोध कराते हुए प्रगति व धार्मिकता की ओर अग्रसर करती है। धार्मिकता का मार्ग सदैव मानव का कल्याण करता है और उसकी उन्नति का करण बनता है, किन्तु यदि शिक्षा में मानवीय मूल्य नही तो वह शिक्षा मानव का विकास नही करती।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि नैतिक शिक्षा, शिक्षा की आधार शिला है। इसके माध्यम से मानव के व्यवहार एवं आचरण में मानवीय दृष्टिकोण विकसित होता है। मानव मन में उदारता, नम्रता व सहनशीलता की भावनाएं विकसित होती हैं। नैतिक शिक्षा ही विश्व बंधुत्व की भावना को प्रसारित करती है। नैतिक शिक्षा के द्वारा मानव समाज में सह दृ अस्तित्व, सुख, शांति एवं समृद्धि का मार्ग प्रशस्त होता है।

नैतिक गुणों से सम्पन्न नागरिक राष्ट्रीय चरित्र की रक्षा कर सकते हैं और समाज में फैली हुई कुरुतियों से मुक्ति दिला सकते हैं। नैतिक शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्ति को संसार का वास्तविक ज्ञान होता है, और उसे अपने जीवन के लक्ष्यों की जानकारी हो जाती है। नैतिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मानव के व्यक्तित्व में धैर्य, अहिंसा तथा विपरीत परिस्थितियों में भी मानसिक संतुलन बनाए रखने के गुणों का विकास करना है।

नैतिक शिक्षा का अर्थ और महत्व को भली प्रकार समझने के पश्चात प्रस्तुत लेख में अब हम रीतिकालीन समाज की अवधारणा तथा नैतिक शिक्षा से परिपूर्ण समाज का अध्ययन करेंगे।

रीतिकालीन समाज सामन्तवादी समाज था, जिसमें राजा, अधिकारी, सामन्त, जमींदार आदि सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित थे। सम्पूर्ण ग्रामीण समाज में सामन्तों और जमींदारों के अत्याचारों का बोलबाला था। ग्रामीण जनता इनकी आज्ञा के बिना कोई कार्य नहीं करती थी। राजदरबारी वर्ग विलासिता में मग्न रहता था। विलासिता के समक्ष वे नैतिकता और मानवमूल्यों को विस्मृत करते गये। राजदरबारी वर्ग का प्रमुख धर्म ग्रामीण जनता का शोषण करना था, शनैः–शनैः उनकी नैतिकता का पतन होता गया।

ग्रामीण जनसाधारण अनेक संकटों और दुःखों से घिरे रहने के बाद भी अपने मूल्यों और आदर्शों को नहीं भूले थे। नैतिक शिक्षा, नैतिक आदर्शों और मानवमूल्यों के क्षेत्र में रीतिकालीन ग्रामीण जनसाधारण का जीवन राजदरबारी जीवन की अपेक्षा अधिक उन्नत स्थिति मे था। यदि रीतिकालीन समाज में कहीं नैतिकता के दर्शन होते हैं तो वह मात्र ग्रामीण क्षेत्र ही था। लोक जीवन अपनी संस्कृति और आदर्शों के संरक्षण में पूरी तरह सफल था।

रीतिकालीन राजदारबारी परिवेश अनैतिक आदर्शा से युक्त था। सामान्यतः राजकर्मचारी शासक, सामन्त वर्ग अनैतिकता का वातावरण स्थापित करते थे। जनसाधारण पर भी अनैतिकता का प्रभाव पड़ा किन्तु धार्मिक प्रवृति के कारण वे पूर्णतया अनैतिकता के रंग में न रंग सके। श्रंगार कवियों ने जहाँ एक ओर दरबारी वर्ग की अनैतिकता का उद्घाटन किया वहीं दूसरी ओर सामान्य जनता के जीवन में व्याप्त नैतिकता के गुणों पर भी प्रकाश डाला।

रीतिकालीन ग्रामीण परिवेश में धार्मिक एवं नैतिक आदर्शों की धारा प्रवाहित होती रही है। ग्रामीण जनता धर्म पर अटूट विश्वास करती थी। यही कारण था कि अनैतिक व्यवहार में संलग्न होना वे अधर्म मानती थी। ग्रामीण जनता के मन मे ईश्वर के प्रति अटूट आस्था, श्रद्धा, भक्ति, परोपकार, सत्यता, सदाचार, संयम, नम्रता, सज्जनता, दया, सहनशीलता, संतोष आदि मानव मूल्य विद्यमान थे।

नैतिक शिक्षा के प्रभाव में नैतिक मूल्य एवं मानवमूल्यों के प्रभाव के परिणामतः ही समाज घोर विनाश से बच गया था। ग्रामीण परिवेश में विद्यमान नैतिक आचरण के प्रभाव के कारण ही रीतिकालीन श्रंगार कवियों के काव्य सृजन में नैतिकता के आदर्श दृष्टिगोचर होते हैं। ग्रामीण परिवेश में व्याप्त नैतिकता की भावना देखकर रीतिकालीन कवियों की श्रंगारिक रचनाओं के स्थान पर सदाचार, परोपकार, संयम, तप, उपासना, सहनशीलता, सज्जनता आदि नैतिक गुणों से ओत – प्रोत रचनाओं का सृजन हो रहा था। कुलपति मिश्र ने सज्जनता के गुणों का वर्णन रस रहस्य में इस प्रकार किया

सज्जन मुख मीठे वचन , सहज न क़हत बनाए ।
लेबौ कौन सुगंध कौ, भवरन देत सिखाय ॥ 5

प्रेम मानव जीवन का प्रमुख गुण माना जाता है। प्रेम चाहे माता – पुत्र का हो, भाई – बहन का हो, मित्रों का या फिर पति – पत्नी का हो किन्तु प्रेम में उदातता अत्यावश्यक होती है। प्रेम से रहित हृदय शमशान के समान है। रीतिकालीन ग्रामीण परिवेश में साधारण जनता मानव के प्रति प्रेमभाव रखती थी। ग्रामीण स्त्रियाँ पति के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित थीं। पति के प्रति अथाह प्रेम के कारण ही स्त्रियाँ सदैव उनके पद चिह्नों पर चलती थीं। पति के सुख में सुखी होना और दुख में दुखी होना उनका परम धर्म था। कृषकों के पास प्रेम ही एक ऐसा अवलम्ब था, जो जीवन के सभी अभावों को भुलाने में सहायक सिद्ध होता था। रीतिकालीन ग्रामीण समाज में स्त्री पुरूष के सम्बन्धों को तभी सामाजिक स्वीकृति प्रदान की जाती थी जब विवाह संस्कार सम्पन्न होता था। विवाह के नैतिक प्रयोजन के अन्तर्गत स्त्री और पुरूषों के कर्तव्यों को महत्व दिया गया। ग्रामीण संस्कृति के अनुसार आदर्श पत्नी वही मानी गई जो सदैव तन, मन से अपने पति के प्रति समर्पित रहती है, और पर पुरूष का विचार भी अपने मन में नहीं लाती है। इसी प्रकार पुरूषों का प्रमुख नैतिक कर्तव्य अपनी पत्नी के प्रति एकनिष्ठ प्रेम करना था। ग्रामीण संस्कृति में विवाह से पूर्व स्थापित स्त्री – पुरूष के सम्बन्धों को अनैतिक माना जाता था, क्योंकि ऐसे सम्बन्धों में स्थिरता का अभाव होता है। विवाह एक नैतिक बंधन माना गया, जो स्त्री पुरूष को सदैव पवित्रता और शुद्धता की डोर में बाँधे रहता है। विवाह के पश्चात् मनुष्य धर्म, अनुष्ठानों को सम्पन्न करता हुआ सामाजिकता को प्राप्त करता है। ग्रामीण जनसाधारण नैतिक आचरण और मानव मूल्यों के अनुसार वैवाहिक जीवन व्यतीत करते थे।

रीतिकालीन ग्रामीण परिवेश में यदि कोई पुरूष अपनी पत्नी के होते हुए पराई स्त्री की ओर आकर्षित होता था तो उसे अनैतिक आचरण माना जाता था। रीतिकालीन ग्रामीण नैतिक शिक्षा के अनुसार सदाचार परोपकार, सहनशीलता, संयम, विनम्रता आदि मानवमूल्यों के अतिरिक्त पतिव्रत धर्म का पालन करना स्त्रियों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण धर्म था। यदि विवाहित स्त्री किसी अन्य पुरूष के प्रति आकृष्ट होती थी, तो उसे अपवित्र और अधर्मी की संज्ञा दी जाती थी। ऐसी भी मान्यता थी कि अन्य पुरूष के प्रति आकृष्ट होने वाली स्त्री का पतिधर्म नष्ट हो जाता था।

रीतिकालीन ग्रामीण समाज की स्त्रियाँ नैतिकता का आचरण करते हुए अपने सम्बन्धों को मधुर बनाती थी, यही कारण था कि स्त्री को देवी का स्थान प्राप्त था। कविवर ठाकुर ने अन्य पुरूष के प्रति आकर्षित होकर अनैतिक कार्य करने वाली स्त्रियों की दुर्दशा का वर्णन किया है

छोड़ि पतिव्रत प्रीत करी निबही नहि श्रौण सुनी हम सोऊ,
मौन भयै रहनेई परौ सहनेई परौ जो कहै कछु कोऊ,
साँची भई कहनावति वा कवि ठाकुर कानसुनी हती जोऊ,
माया मिली नहिं राम मिले दुविधा में गये सजनी सुनु दोऊ।।[6]

रीतिकाल में नैतिक शिक्षा व मानवमूल्यों के अंतर्गत धर्म को जीवन का आधार माना गया। ग्रामीण सौभाग्यवती स्त्रियाँ पति पर संकट आने पर स्वयं संकट को झेलने के लिए अडिग रहती थीं। पति का सम्मान करना, सुख – दुख में पति का साथ देना, पति का नाम न लेना, पति को भोजन खिलाने के पश्चात् स्वयं भोजन गृहण करना आदि सौभाग्यवती स्त्रियों के लिए नैतिक आदर्श, कर्तव्य और मान्यताएँ प्रचलित थी। रीतिकालीन ग्रामीण स्त्रियों के लिए नैतिक आदर्श, कर्तव्य और मान्यताएँ प्रचलित थी। रीतिकालीन ग्रामीण स्त्रियाँ पति का नाम नहीं लेती थीं उनका विश्वास था कि पति का नाम न लेने से पति की आयु में वृद्धि होती है।

स्त्रियाँ ग्रामीण समाज का प्रमुख अंग थीं। निर्धनता में जीवन व्यतीत करने वाली स्त्रियाँ अपने नैतिक आदर्श मानवमूल्य और नैतिक कर्तव्यों को नहीं भूली थीं। रीतिकालीन ग्रामीण समाज में नैतिकता की स्थापना में प्रमुख श्रेय स्त्रियों का ही रहा है। नैतिकता की उन्नति हेतु दया, क्षमा, उदारता, सहानुभूति, सज्जनता, नम्रता, दान आदि नैतिक गुणों को मानव हित की दृष्टि से आवश्यक माना गया, किन्तु रीतिकालीन दरबारी परिवारों में नैतिक गुणों का सर्वथा अभाव परिलक्षित होता है। समाज में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना हेतु जनता के लिए कुछ नैतिक कर्तव्यों, आचार–व्यवहार और आदर्शों को निर्धारत किया जाता है जिनका पालन करने से समाज में शान्ति व्यवस्था स्थापित होती है और जनता का जीवन उदातता को प्राप्त करता था। इसी प्रकार रीतिकाल की ग्रामीण जनता ने भी अपने व्यवहार व विचारों की पवित्रता को बनाए रखने के लिए कुछ नैतिक आदर्श निधारित किये थे। दरबारी परिवार विलासिता की चमक – दमक में नैतिक आदर्शों को विस्मृत करते जा रहे थे किन्तु ग्रामीण जनसाधारण लोगों के जीवन में नैतिक आचरण परिलक्षित होता है। ग्रामीण जनसाधारण लोगों में सहनशीलता का गुण विशेष रूप से विद्यमान था। राजवर्ग के अत्याचारों को सहकर भी वे अपने कार्य में संलग्न रहते थे।

सहनशीलता को मनुष्य के व्यक्तित्व का प्रमुख नैतिक गुण माना जाता है। रीतिकालीन ग्रामीण कृषक एक ओर तो विपन्नता की परिस्थितियों से दुखी थे और दूसरी ओर अपनी मेहनत के बल पर जीवन के नये सपने संजोते थे, किन्तु राजकर्मचारी, सामन्य, जमींदार आदि कृषकों की दयनीय स्थिति में सुधार होते नहीं देख सकते थे परिणामतः वे कर वसूलने के बहाने कृषकों की फसल हड़प लेते थे और मजदूरों को कम से कम मजदूरी देते थे।

इतने कष्ट सहने के बाद भी ग्रामीण जनता साहसपूर्वक अपने जीवन की विषमताओं को झेलती जा रही थी। भाग्यवादी होते हुए भी वे अपने भाग्य को अपने परिश्रम से बदलने का साहस रखते थे। सहनशीलता रूपी गुण को धारण किये हुए कृषक समाज अपने जीवन को व्यतीत करते जा रहे थे। ग्रामीण साधारण जनता की सहनशीलता और साहस की भावना से प्रभावित होकर कवि पद्माकर ने लिखा है

रे मन साहसी साहस राख सु साहसै सो सब घेर फिरैगे।
ज्यो पद्माकर या सुख में दुख त्यो दूख में सुख सेर फिरैगे।।
बेसही बेनु बजावत स्याम सुनाम हुमारहू तेर फिरैगे।
एक दिना नहिं एक दिना कबहुँ फिरि वे दिर फेर फिरैगे।।[7]

मानवीय गुणों के अंतर्गत नम्रता भी मनुष्य का नैतिक गुण माना जाता है। रीतिकालीन ग्रामीण साधारण जनता विनम्र, शान्त और सरल स्वभाव की थी। ग्रामीण कृषक सादा जीवन व्यतीत करते थे। वैभव विलास की चकाचौध अमोद – प्रमोद आदि उनके लिए स्वप्न के समान थे। कृषक जन आपस मे प्रेम भाव से रहते थे और नम्रतापूर्ण व्यवहार करते थे। ग्रामीण जनता का विश्वास था कि नम्र, शील, शान्त व्यवहार से अभिमानी व्यक्ति भी अपना मान व्याग देते है।

परोपकार जैसा महान नैतिक गुण भी रीतिकालीन ग्रामीण जनता के व्यक्तित्व में विद्यमान था। स्वयं जीवन के कष्टों का सहन करने वाले श्रमजीवी और कृषक व्यक्ति सदैव दूसरों की भलाई करने के लिए तत्पर रहते थे। परोपकार से उन्हें आत्म सन्तुष्टि प्राप्त होती थी। यदि उनका जीवन किसी के काम आ जाता था तो वे स्वयं को धन्य मानते थे। आचार्य अमीरदास ने ग्रामीण जनता के नैतिक व्यवहार में प्रतिष्ठित विनम्रता से प्रेरित होकर नम्रता के महत्व को स्पष्ट करते हुये लिखा है

सीतल सांत सुभाव ते, तेजमान भय अंग।
गई सूर की सूरता, हिम की हिमता संग ॥ 8

रीतिकालीन ग्रामीण परिवेश में नैतिक आदर्शों का विशेष महत्व था। परोपकार, सहनशीलता, दया और विनम्रता साधारण ग्रामीण लोगों के प्रमुख नैतिक गुण थे। जीवन की विषमताओं और दुःखों को सहकर के भी वे अपने नैतिक आदर्शों को नहीं भूले थे। चरणदास ने अपनी रचना संतवाणी संग्रह में इन नैतिक गुणों का वर्णन इस प्रकार किया

दया, नम्रता , दीनता छिपा सील संतोख ।
इनकु लै सुमिरन करै , निस्चे पावै मोख ॥ 9

इस प्रकार ग्रामीण साधारण जनता के जीवन में सामाजिक नैतिकता, पारिवारिक नैतिकता और मानवीय व्यक्ति्व सम्बन्धी नैतिक गुणों के दृश्य परिलक्षित होते हैं। रीतिकालीन ग्रामीण समाज में नैतिक शिक्षा के अंतर्गत नैतिक आदर्श मानव जीवन हेतु अत्यावश्यक गुण है नैतिक आदर्श सदैव मानव का पथप्रदर्शन करते है उचित अनुचित का समग्र ज्ञान नैतिक आदर्शों द्वारा ही प्राप्त होता है।
यही नैतिक शिक्षा संबंधी गुण मानव की प्रगति व उन्नति का निर्धारण करते हैं। मात्र धन कमाना ही मानव की प्रगति नही होती सच्ची प्रगति तो आदर्श चरित्र और आदर्श व्यवहार ही होता है, क्योंकि नैतिक गुणों का नाश मानवता के नाश का द्योतक है। अतः अपने अस्तित्व एवं चरित्र को चिरकाल तक सुरक्षित बनाये रखने के लिए अपने नैतिक आदर्शों का स्मरण रखना और धर्म का पालन करना आवश्यक हैं।

संदर्भ सूची

1. हिन्दी रीतिसाहित्य, डॉ. भगीरथ मिश्र, प्रकाशन राजकमल पब्लिकेशन लिमिटेड मुंबई, प्रथम संस्करण सन् 1956
2. हिन्दी साहित्य का उत्तरमध्यकाल रीतिकाल, संपादक डॉ. महेंद्र कुमार, प्रकाशन आर्य बुक डिपो करौलाबाग नई दिल्ली 5, सन् 1968
3. भारतीय शिक्षा का विकास एवं सामयिक समस्याएं, संपादक डॉ. मालती सारस्वत, आलोक प्रकाशन 165/64 कच्चा हाता, अमीनाबाद, लखनऊ इलाहाबाद, प्रथम संस्करण सन् 1994
4. भारतीय शिक्षा का विकास एवं सामयिक समस्याएं, संपादक डॉ. मालती सारस्वत, आलोक प्रकाशन 165/64 कच्चा हाता, अमीनाबाद, लखनऊ इलाहाबाद, प्रथम संस्करण सन् 1994
5. कुलपति मिश्र, संपादक डॉ. कृष्ण चंद्र वर्मा, प्रकाशन हिन्दी साहित्य कुटीर बनारस सन् 2006
6. ठाकुर ठसक, संपादक लाला भगवानदीन, प्रकाशन नागरी प्रचारणी सभा काशी
7. पद्माकर, संपादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा काशी, प्रथम संस्करण सवत् 2016
8. आचार्य अमीरदास, संपादक डॉ. राम प्रकाश, प्रकाशन आर्य बुक डिपो 30 नाईवाला करौलाबाग नई दिल्ली
9. चरणदास, संपादक विश्वनाथ प्रकाश मिश्र, प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा काशी संवत् 2030
10. शिक्षा दर्शन, संपादक सीताराम चतुर्वेदी, प्रकाशन हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश माया प्रेस प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद दृ 3
11. रीतिकालीन साहित्य परिवेश एवं मूल्य, संपादक डॉ. इन्द्रबहादुर सिंह, अरविन्द प्रकाशन मुंबई संस्करण सन् 1988
12. रीतिकालीन कलाएं एवं युग जीवन, संपादक डॉ. जनेश्वर प्रसाद, प्रयाग प्रकाशन 164 एत्रिपारी कालोनी सोहबतियाँ बाग इलाहाबाद, प्रथम संस्करण सन् 1990
13. रीतिकाव्य की भूमिका, संपादक डॉ. नगेन्द्र, संतति प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण सन् 1968
14. संस्कृति एवं सभ्यता भारतीय दृष्टिकोण, संपादक डॉ. बृजबिहारी निगम, स्मृति प्रकाशन शाहराबाग इलाहाबाद, प्रथम संस्करण सन् 1988
15. रीतिसाहित्य विविध संदर्भ, संपादक डॉ. हर महेंद्र सिंह बेदी, प्रतिमा प्रकाशन टैगोर नगर होशियारपुर, प्रथम संस्करण सन् 1988
16. मध्यकालीन हिन्दी काव्य में सांस्कृतिक समन्वय, संपादक डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, प्रकाशन हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद, प्रथम संस्करण सन् 1985
17. भारतीय समाज और संस्कृति, संपादक प्रो. सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, वाराणसी –1, प्रथम संस्करण सन् 1985